International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(3): 117-119

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(3): 117-119
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 01-03-2017
Accepted: 02-04-2017

डा0 सीमा सिंह
असि0 प्रो0, एम0ए0 (संस्कृत) नेट, पी0एच0डी0 (संस्कृत) प्रभाकर, षिक्षा विषारद श्रीरैनाथ ब्रह्मदेव पी0जी0 कालेज,सलेमपुर, देवरिया, उत्तर प्रदेश, भारत

Correspondence
डा0 सीमा सिंह
असि0 प्रो0, एम0ए0 (संस्कृत) नेट, पी0एच0डी0 (संस्कृत) प्रभाकर, षिक्षा विषारद श्रीरैनाथ ब्रह्मदेव पी0जी0 कालेज,सलेमपुर, देवरिया, उत्तर प्रदेश, भारत

संस्कृत नाटको मे नाट्यषास्त्र की परम्परा एवं उनका वैषिश्ट्य

डा0 सीमा सिंह

सारांश
श्रव्यकाव्य श्रवणमार्ग से हृदयावर्जक होता है परन्तु नाटक नेत्रमार्ग से हृदय को चमत्कृत करता है काव्य मे रसानुभूति के निमित्त अर्थ ज्ञान अनिवार्य होता है, इसके विपरित नाटक में इसकी आवष्यक्ता नहीं होती। काव्य की विषद रसानुभूति के लिये जिस कवित्वमय वातावरण की अनिवार्यता होती है उसकी सृश्टि सभी केलिये सम्भव नहीं है। किन्तु नाटक में रसोपयोग की समस्त सामग्री, वेश–भूशा नाना प्रकार के परदो आदि के संविधानो द्वारा उपस्थित की जाती है। रसानुभूति के निमित्त वातावरण स्वयं उपस्थित हो जाता है। इसीलिये समान्य जन भी नाटक की ओर आकृश्ट हो जाता है। नाटक कवित्व की चरमसीमा है संस्कृत नाटको की अपनी विषेशता हे। संस्कृत नाटको को लिखने की परम्परा कब, कैसे ,क्यो और कहॉ से आयी, उनके बीज कहॉ से प्राप्त हुये उनका वैषिश्ट्य क्या है? इत्यादि का विवेचन षोधपत्र का विशय है।

मूल शब्दः नाट्यवेद, रंगमंच, अभिनय, नट, नर्तक, नृत्य, सूत्रधार, वाग्जीवन, कुषीलव, विदूशक, नान्दी पूर्वरंग, प्रस्तावना, नटी, भरतवाक्य।

प्रस्तावना
नाट्य कला सर्वाधिक रम्य कला है श्रव्यकाव्य की अपेक्षा नाटक सदैव प्रतिश्ठित रहा है– ''काव्येशु नाटकं रम्यम्'' । अवस्था का अनुकरण नाट्य है– अवस्थनुकृतिर्नाट्यम् [1] । जिस प्रकार चाक्षुश ज्ञान का विशय होने के कारण नील इत्यादि रूप की संज्ञा से अभिहित होते है, उसी प्रकार दृष्य होने के कारण नाट्य भी रूप की संज्ञा से अभिहित होता है। भरत के मतानुसार नाट्य सार्ववर्णिक, वेद है। इसका उपयोग प्रत्येक वर्ण के लिये है। नाटक लोकवृत का अनुकरण है– लोकवृत्तानुकरणंनाट्यम [2] । कोई भी ज्ञान षिल्प, विद्या, योग अथवा कर्म ऐसा नहीं है जो इस नाट्य में दृश्टिगोचर नहीं होता– न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ।। [3]

भारतीय परम्परा के अनुसार नाटक की उत्पत्ति त्रेता युग मे ब्रह्मा के द्वारा की गयी थी। सतयुग मे अत्यन्त सुखी होने के कारण प्राणियो को किसी प्रकार के मनोरंजन की आवष्यक्ता नही थी। किन्तु त्रेता युग मे आगमन के साथ ही जगत् मे दुःख का अविर्भाव हुआ। अतः देव तथा दानव दोनो एक साथ ही ब्रह्मा जी के समीप गये और निवेदन किया कि संसार के तापो से क्षणिक निवृति के निमित्त हे पितामह ! हमें कोई ऐसी वस्तु प्रदान करें जिससे मनोरंजन के साथ ही हम अपने सांसारिक दुःखो को विस्मृत कर सकें। निवेदन से तुश्ट ब्रह्मा ने नाट्यवेद को प्रकाषित किया। एतन्निमित उन्होने ऋृगवेद से पाठ्य सामवेद से संगीत, यजुर्वेद से अभिनय तथा अथर्ववेद से रस लेकर नाट्य कला की सृश्टि की और इसे पंचम वेद की संज्ञा दी। इसमे भगवान षंकर ने ताण्डव नृत्य, भगवती पार्वती ने लास्य नृत्य तथा भगवान विष्णु ने चारो वृतित्यो का समावेष कर इसमे पूर्ण कलात्मकता उत्तपन्न कर दी। ब्रह्मा जी ने मर्त्यलोक तक इस कला को पहुॅचाने का भार भरतमुनि को सौपा और इस प्रकार द्युलोक से यह कला मर्त्यलोक तक पहुँची [4]। संस्कृत नाट्य साहित्य ने वैदिक वाङमय, इतिहास तथा पुराणो से प्रचुर प्रेरणा प्राप्त की।

संस्कृत नाट्य साहित्य के विकासकम मे कतिपय तथ्य विचारणीय हैं
1. भरत के नाट्यषास्त्र की रचना के पूर्व भारतीय नाटक तथा भारतीय रंगमंच पूर्णतः विकसित हो चुके थे।
2. नाट्यकला के निर्माण मे चारो वेदो का योगदान रहा है।
3. पूर्वकाल मे पुरूश–स्त्री दोनों अभिनय करते थे।

4. धार्मिक पर्वो पर ही नाटक खेले जाते थे।
5. वैदिककाल में नाटक की सृश्टि नहीं हुयी थी।

कतिपय पाष्चात्य विद्वानों ने भी नाटक की परम्परा की ओर ध्यान दिया आकर्शित किया है। इनमे डा0 रिजवे, डा0 कीथ, प्रो0 पिषेल, प्रो0 हिलब्रैट तथा स्टेनकोनो का नाम प्रमुख है। किन्तु इनके मत प्रमाणिक नहीं माने गये। वैदिक साहित्य में नाटकां एवं नाट्यकला को षिल्पविधियो का समग्र इतिहास दिखाई देता है। अश्टाध्यायी, रामायण, अर्थषास्त्र, वौद्वजातको,जैनग्रन्थो और महाकाव्यो आदि मे नाट्यकला के विभिन्न अंगो उनके पात्रो और पारिभाशिक षब्दो का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। वाल्मीकि रामायण मे नट, नर्तक,नाटक, नृत्य का उल्लेख अनेक स्थलों पर प्राप्त होता है। नृत्य तथा नाटकीय दृष्य उस समय नगरो और प्रसादो मे होते थे महर्शि वाल्मीकि ने लिखा है– नाराजके जनपदे प्रह्रश्टनटनर्तकाः अर्थात् षासनहीन जनपद मे नट और नर्तक प्रसन्न नही दिखायी देते [5]। महाभारत में नट, नर्तक, गायक, सूत्रधार आदि के उल्लेख मिलते हैं, लिखा हैं– आनर्ताष्च तथा सर्वे नट–नर्तक–गायकाः[6]।। कतिपय पुराणो मे भी नाटको के अभिनय का उल्लेख है। बौद्वसाहित्य में भी नाटक की प्राचीनता सिद्व होती है। महावैयाकरण पाणिनी की ' अश्टाध्यायी' मे भिक्षुसूत्रो और नटसूत्रो के प्रणेता पराषर्यषिलालि तथा कृषाष्व नामक दो प्राचीन आचार्यो का उललेख मिलता है। पराषर्यषिलालिभ्यां भिक्षुनटसूत्रयोः[7] इससे सिद्व होता है कि नाटको का उस समय इतना प्रचार था कि नटो की षिक्षा के लिये स्वतंत्र सूत्र ग्रन्थों की रचना होने लगी थी। चाणक्य के अर्थषास्त्र में नट, नर्तक, गायक, वादक, वाग्जीवन, कुषीलव आदि मनोरंजन प्रस्तुत करने वालो के नाम एकत्र मिलते हैं। अभिनय की धार्मिक उपयोगिता का परिचय भरहुत सॉची के स्तूपो की परिभिति पर उत्कीर्ण वोधिसत्व सम्बन्धी कथानको से होता है। संस्कृत साहित्य में नाटककारों की एक सुदीर्घ एवं जीवन्त परम्परा रही है और इस परम्परा का प्रर्वतन महाकवि भास से होता है मालविकाग्निमित्र की प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि भास, कालिदास से पूर्ववर्ती और प्रसिद्व नाटककार थे। भास के नाम से 13 नाटक प्राप्त होते है कथानक की दृश्टि से इन नाटको को चार भागो मे बाटॉ जा सकता है।

1. रामकथा पर आधारित–प्रतिमानाटक, अभिशेक नाटक।
2. महाभारत कथा पर आधारित –दूतवाक्य,कर्णभार, दूतघटोत्कच, ऊरूभंग,मध्यम वयायोग, पंचराज,बालचरित।
3. उदयन कथा पर आधारित–प्रतिज्ञायौगन्धरायण, स्वपनवासवदत्तम्।
4. कल्पना पर आधारित–अविमारक, चारूदत्त।

दुसरे नाटककार अष्वघोश है। ये उच्च कोटि के कवि, दार्षनिक, आचार्यभिक्षु, वैयाकरण, वाग्मी, और वौद्व धर्म के प्रचारक थे। इनके तीन रूपको के जीर्णावषेश मिलते है इनमे से एक का नाम षरिपुत्र–प्रकरण है इसके बाद संस्कृत नाटककारो के मुकुटमणि कालीदास का समय आता है इनके तीन नाटक विष्वविश्रुत है,। मालविकाग्निमित्र, विक्रमोवषीयम् और अभिज्ञान षाकुन्तलम। चौथे नाटककार दिंग्नाग है जिनका एकमात्र नाटक कुन्दमाला प्राप्त होता है। पाचवॉ नाम षूद्रक का आता है इनकी एकमात्र रचना मृक्षकटिक उपलब्ध है। षूद्रक के बाद विषाखदत्त का समय माना जाता है विषाखदतत ने संस्कृत साहित्य को मुद्राराक्षस नामक अनुपम नाट्य रचना से अलंकृत किया है यह सात अंको का राजनीतिप्रधान नाटक है । तत्पष्चात भारत के प्राचीन विद्या–व्यसनी राजाओं मे सम्राट हर्शवर्धन का नाम परम प्रसिद्व है इनके द्वारा तीन रूपको की रचना की गयी है। पियदर्षिका, रत्नावली, नागानन्द,। आठवॉ क्रम भट्टनारायण का है इनकी एकमात्र कृति वेणीसंहार है, इसके बाद संस्कृत साहित्य मे भवभूति का पदापर्ण होता है, कालीदास के तुल्य ही भवभूति का भी महत्वपूर्ण प्रतिश्ठित स्थान है, भवभूति ने संस्कृत साहित्य में करूण रस की मदांकिनी बहाकर भारतीय काव्य भूमि को सदा–सदा के लिये अभिशिक्त कर दिया है। इनके तीन नाटक उपलब्ध हैं मालतीमाधव, महावीर चरित और उत्तररामचरित। दसवॉ नाम अनर्घराघव के रचयिता मुरारि का है मुरारि के पष्चात राजषेखर ने स्वय अपने शट्प्रबन्धो का निर्देष किया है। इनके काव्य मीमासा का सम्बन्ध अलंकार षास्त्र से है। नाटककारो के विकासक्रम मे बारहवॉ स्थान कृश्ण मिश्र का है इनका एकमात्र नाटक प्रबोधचन्द्रयोदय प्राप्त है षान्तरस प्रधान इस नाटक मे श्रद्वा, भक्ति, विद्या, ज्ञान, मोह, दम्भ, बुद्वि इत्यादि अमूर्त भावमय पदार्थो को विभिन्न स्त्री और पुरूश पात्रो मे विभक्त कर आध्यात्म विद्या का सुन्दर व रोचक उपदेष प्रस्तुत किया गया है। कृश्ण मिश्र के पष्चात जयदेव की दो कृतियॉ–प्रसन्नराघव और चन्द्रालोक प्राप्त है। चन्द्रलोक अलंकार ग्रन्थ है तथा प्रसन्नराघव नाटक है। फिर वत्सराज के छः कृतियो का नाम आता है– किरतार्जुनीय, न्याययोग कर्पूरचरित, हास्यचूडामणि, रूक्मणिहरण, त्रिपुरदाह, व समुन्द्रमन्थन। तत्पष्चात दामोदर मिश्र का हनुमन्नाटक है। यह नाटक महानाटक के रूप मे प्रसिद्व है। हनुमन्नाटक की कथा रामायण पर आधारित है। सोलहवॉ नाम यषोवर्मा का है। यषोवर्मा भवभूति के आश्रयदाता स्वयं में सरस्वती के एक श्रद्वालु सेवक थे। इनकी रचना '' रामाभ्युदय '' है इनके बाद उदयन के कथाचक्र से सम्बद्व नाटको मे तापस वत्सराज की प्रसिद्वि विपुल थी। अठारहवें क्रम मे षक्तिभद्र का आष्चर्य चूडामणि, इन्हें संस्कृत क`मूर्धन्य नाटककारो की श्रेणी में लाने के लिये पर्याप्त है। सोलहवीं षदी के कवियो में रूपगोस्वामी का नाम अद्वितीय है। इन्होने सत्रह ग्रन्थो की रचना की है जिनमें हंस–सन्देष, उद्वव–सन्देष, अश्टादष, लीलाछन्द, गोविन्दविरूदावली, विदग्धमाधव, नाटकचन्द्रिका, सक्षिप्त भगवतामृत, आनन्दमहोदधि आदि प्रमुख है। इसके बाद चैतन्य चन्द्रोदय नामक नाटक प्राप्त होता है इसके रचयिता कर्णपूर है। आगे कंसवध के रचयिता षेशकृश्ण और सुभद्राहरण के रचयिता आते है। सालहवी षदी के अन्य नाटको मे– गुरूरामविरचित–रत्नेष्वर प्रसाद, कृश्णदेव विरचित–जाम्बवती–कल्याण, नारायण विरचित– महिश मंगल,भाण आदि प्रमुख है। उन्नीसवी षदी के प्रमुख नाटको मे षंखचूड, रसनदभाण, बल्लीपरिणय, पारिजातहरण,अदितिकुण्डलाहरण,रूक्मणीस्वयंवर, प्रभावतीहरण, राजलक्ष्मी परिणय, मधूसूदन विरचित, जानकी परिणय, रामजन्म भाण, त्रिपुरविजय व्यायोग है।

आधुनिक संस्कृत नाटको मे षिवदर्षन तिवारी विरचित रसनदभाण तथा भावस्वरूप, गौतम प्रसाद मिश्र विरचित, पारिजातनाटकम्, भाश्कराचार्य त्रिपाठी विरचित स्नेहसौवीरम् तथा वनमाला भवालकर विरचित रामवनगमनम् आदि है।

संस्कृत नाटको का वैषिश्ट्य

संस्कृत नाटक प्रायः सुखन्त होता है। भरतमुनि के मतानुसार कवि को ऐसा नाटक रचना चाहिए कि उसकी सब सन्धियो के जोड़ ठीक–ठीक बैठे हों, उसे खेलने मे सुविधा हो, उसमे सुख की बात हो और उसका नाम मृदु षब्द से युक्त हो।

षुष्लिश्टं सन्धियोगं च सुप्रयोगं सुखश्रयम्।
मृदुषब्दाभिधानं च कवि कुर्यान्तु नाटकं।।[8]

रामचन्द्र गुणचन्द्र का कथन है– उदाता, रंजका भावाः स्थापनीयाः पुरः पुरः [9]। अर्थात श्रेश्ठ तथा मनोरंजक भाव पद–पद पर नाटक मे रखनी चाहिए। नाटक का उदेष्य है जनमनोरंजन। जनमनोरंजन उसी कार्य से होगा, जिसमे चाहें जितनी पीड़ा, बाधा, विपत्ति आदि का वर्णन हो किन्तु उसका अन्त आनन्दमय हो। नाटक मे विदूशक की कल्पना भी अद्भुत् है। इसकी भेश–भूशा, बोल–चाल, आचार–व्यवहार सब ऐसा होता है जिसे देखते ही हॅसी आ जाय।

संस्कृत नाटको का आख्यान नितान्त मौलिक है। वह रामायण, महाभारत, पुराण तथा वृहद कथा आदि के उपर आश्रित रहता है, सभी नाटककारो ने कतिपय निर्षिचत रूढ़ियो का नियमपूर्वक पालन

किया है। नान्दी, पूर्वरंग, प्रस्तावना, नाटकवस्तु और नाटककार का परिचय, कतिपय कार्यो का निशेध, सूत्रधार और नटी, भरतवाक्य आदि ऐसी बातें है जो सामान्य रूप से सभी नाटकों मे पायी जाती है। हमारे नाट्याचार्यो ने नान्दी पूर्वरंग और प्रस्तावना को अधिक महत्व दिया है। पात्रो को षिक्षित करने वाला, विभिन्न प्रकार के अभिनय को सिखानेवाला, नाटक के अंग–प्रत्यंग और सूक्ष्म भेदो से परिचित सूत्रधार नाटक का सच्चा पारखी होता है। नटी कुछ ऋतु सम्बन्धी गीत प्रस्तुत कर दर्षक को रिझाती है और अभिनेताओं को तैयार होने का अवसर देती है।

नाट्य रूढ़ियो मे कतिपय निशिद्व बातें भी है। क्रोध, पागलपन,,षोक,ताप,परित्याग, खलबली,विवाह,अद्भुतरस से सम्बद्व रखने वाली बातें प्रत्यक्ष दिखायी जा सकती है किन्तु युद्व राज्यविप्लव, मरण, नगर का घेरा आदि कार्यो की सूचना ही दी जाती है [10]। आचार्य विष्वनाथ का मतह ै कि दूर से पुकारना, वद्व, युद्व, राज्यविप्लव, देष विप्लव आदि विवाह, भोजन, षाप, उत्सर्ग, मृत्यु, मैथुन, दन्तच्छेद, नखच्छेद, षयन, चुम्बन, नगर का घेरा, स्नान और अंगलेपन इत्यादि कार्यो को नाटक मे नही दिखाना चाहिए[11]। धनन्जयकृत दषरूपक[12] और षारदा तनयकृत–भावप्रकाषनम[13] मे यही बात लिखा है।

ब्वदबवसनेपवद. अतः संस्कृत नाटको के उदगम मे वेदो के महत्वपूर्ण योगदान को देखते हुये विष्व साहित्य मे भारतीय नाट्य साहित्य को सर्वाधिक प्रचीन माना गया है। आधुनिक अध्ययन–अनुषीलन और अनुसंधान से भी यह प्रमाणित हो गया है कि वेद मंत्रो मे नाटकीय तत्व प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। वैदिक काल मे नाटक के प्रधान अंग नृत्य, संगीत व संवाद का अस्तित्व विद्यमान था और यही अंग विकसित होकर कालान्तर मे नाटक के रूप मे परिवर्तित हो गये। संस्कृत साहित्य मे नाटयभिनय और नाटको की रचना परम्परा बहुत पुरानी है और आदिकाल से ही भारतीय जनजीवन के मनोरंजन के लिये इन नाटको को श्रेश्ठ माध्यम के रू प मे अपनाया जाता रहा है।

सन्दर्भ–ग्रन्थ सूची

1. दसरूपक 1–7
2. नाट्यषास्त्र 1–109
3. वही 1–144
4. भरतनाट्यषास्त्र 1–11 से 20 तक
5. वा0रामायण 2–67, 15
6. महाभारत वनपर्व 15/13
7. अश्टाध्यायी 1–4/3/110, भरतनाट्य षास्त्र 11/120
8. भरतनाट्य षाास्त्र 5
9. वही 20/20, 21
10. विष्वनाथ साहित्य दर्पण 6/16–18
11. दसरूपक 3/34–36
12. षारदातनै भावप्रकाष 8